

इकाई 3 'अंधेर नगरी' का नाट्यशिल्प

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 अंधेर नगरी : एक प्रहसन के रूप में
- 3.3 अंधेर नगरी के नाट्यशिल्प की विशेषताएँ
- 3.4 अंधेर नगरी का रूप-विधान
- 3.5 भाषिक प्रयोग
- 3.6 रंगमंचीय प्रस्तुति
- 3.7 सारांश

3.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने भारतेन्दु-युगीय समय, अंधेर नगरी में व्यक्त यथार्थ, अंधेर नगरी में व्यक्त राजनीतिक दृष्टि, व्यंग्य और विडम्बना के रूप में अंधेर नगरी के विषय में जाना। प्रस्तुत इकाई में आप अंधेर नगरी के नाट्य-शिल्प का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप अंधेर नगरी के नाट्य-शिल्प की विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे, अंधेर नगरी नाटक के रूप-विधान का वर्णन कर सकेंगे, अंधेर नगरी के भाषिक प्रयोग की व्याख्या कर सकेंगे, और रंगमंच पर अंधेर नगरी की प्रस्तुतियों और अंधेर नगरी के रंगमंचीय पक्ष के बारे में जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम-04 से संबंधित खण्ड-1 की यह तीसरी इकाई है। इस खंड की इस अंतिम इकाई में आपके यह जानना ज़रूरी है कि इस लघु कलेवर के नाटक अंधेर नगरी के नाट्यशिल्प की क्या विशेषताएँ हैं जो इसे एक-साथ इतने सूक्ष्म और व्यापक संदर्भों का सार्वभौमिक नाटक बनाती हैं। कोई भी नाटक अपने कथानक मात्र से महत्वपूर्ण नहीं होता, बल्कि उसकी संश्लिष्टता, समग्रता उसे अमर और सर्जनात्मक बनाती है जिसके लिए नाटककार की संवेदना, नाटक के दृश्य-काव्यत्व और सामूहिकता से उसका प्रत्यक्ष सरोकार और नाट्य-शिल्प पर उसका अधिकार आवश्यक है। इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि अंधेर नगरी नाटक की संरचना में किस तरह शास्त्रीय परम्परा, लोक परम्पराओं और अपनी युगीन परम्पराओं को तो आत्मसात किया ही गया है, यह नाटक बदलते युग के अनुसार हिंदी नाटक और रंगमंच के लिए एक मौलिक, लचीले, जीवन्त और सार्थक नाट्यशिल्प का उदाहरण प्रस्तुत करता है। आप यह भी समझ सकेंगे कि अंधेर नगरी की भाषा की बनावट और उसकी गठन कैसी है। भारतेन्दु ने उसकी भाषा में शब्दों, वाक्यों, मुहावरों के साथ-साथ लय, टोन, आरोह-अवरोह, ध्वनियों एवं क्रियाओं के कौन से प्रयोग किए हैं। और अंत में आप यह जानेंगे कि अंधेर नगरी में रंगमंचीय दृष्टि से किन परंपराओं को अपनाया गया है। उसकी आंतरिक संरचना में रंगमंच किस प्रकार घुला-मिला है और रंगमंचीय प्रस्तुति के रूप में अंधेर नगरी का सौंदर्य क्या है जो उसके शिल्प को भी महत्वपूर्ण बनाता है। इसके अतिरिक्त, आप अंधेर नगरी की रंगमंच पर होने वाली प्रस्तुतियों और रंगमंचीय प्रयोगों के बारे में भी जान सकेंगे। इन सभी पक्षों को समझने पर ही आप अंधेर नगरी की सांकेतिकता और उसकी समकालीन प्रासंगिकता को, तथा उसके शिल्पगत सर्जनात्मक वैशिष्ट्य को समझ सकेंगे।

3.2 अंधेर नगरी : एक प्रहसन के रूप में

अंधेर नगरी एक प्रहसन है पूरा नाटक नहीं। लेकिन इसे भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने छह अंकों में विभाजित किया है। ये सभी अंक अलग-अलग स्थानों पर घटित होते हैं। छोटा नाटक होते हुए भी इसमें पात्रों की संख्या बहुत ज्यादा है। गद्य में संवादों के साथ-साथ पद्य के अंश भी काफी ज्यादा हैं। पहले अंक की शुरुआत ही गीत से होती है। पूरे प्रहसन को रंगमंच पर भी खेला जा सकता है, खुले मंच पर भी

और नुक्कड़ नाटक शैली में भी। वस्तुतः इन तीनों रूपों में यह नाटक खेला भी गया है। नाटक के इन सभी पक्षों के बारे में हम इस इकाई में विचार करेंगे। आइए, सबसे पहले यह देखें कि नाट्य शिल्प की दृष्टि से अंधेरी नगरी की क्या-क्या विशेषताएं हैं।

प्रहसन के रूप में अंधेर नगरी

नाटक नामक पुस्तक में भारतेन्दु ने प्रहसन की परिभाषा करते हुए लिखा था कि 'हास्य रस का मुख्य खेल। नायक राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो। इसमें अनेक पात्रों का समावेश होता है। यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिये बिना नहीं लिखे जाते।' इस परिभाषा को प्रस्तुत करने के बाद उन्होंने हास्यार्णव, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति और अंधेरी नगरी की गणना प्रहसन के रूप में की है। तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु अंधेर नगरी को प्रहसन मानते हैं, लेकिन उसकी शास्त्रीय संरचना में पर्याप्त ढील भी दे देते हैं। उन्हीं के अनुसार, प्रहसन हास्य प्रधान होता है। इस दृष्टि से अंधेर नगरी भी हास्य प्रधान है। लेकिन सिर्फ हास्य प्रधान नहीं वरन् इसमें व्यंग्य का जबर्दस्त पुट है। इसलिए चाहें तो हम यह भी कह सकते हैं कि अंधेरी नगरी हास्य-व्यंग्य प्रधान है, न कि सिर्फ हास्य प्रधान।

भारतेन्दु प्रहसन की दूसरी विशेषता यह बताते हैं कि इसका नायक राजा, धनी, ब्राह्मण या धूर्त कोई भी हो सकता है। इस दृष्टि से विचार करें तो अंधेर नगरी के बारे में साफतौर पर कुछ भी कहना कठिन है। इसमें राजा भी है, ब्राह्मण भी और धूर्त पात्र भी हैं, लेकिन अंधेरी का नगरी नायक किसे माना जाए यह तय करना कठिन है। प्रहसन में महत्व के हिसाब से राजा, मंत्री, गोबरधनदास और महंत का उल्लेख किया जा सकता है, लेकिन इनमें से क्या किसी को भी नायक स्वीकार किया जा सकता है। सबसे पहले राजा पर विचार करें। नाटक का शीर्षक अंधेर नगरी है, लेकिन इसका उपशीर्षक 'अंधेरी नगरी: चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' है। यानी यह नाटक अंधेर नगरी के चौपट राजा से संबंधित है। यहाँ यह जानना महत्वपूर्ण है कि 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' नामक प्रसिद्ध लोकोक्ति को भारतेन्दु ने प्रहसन का रूप दिया। यानी एक ऐसी नगरी का रूपक उन्होंने प्रहसन में निर्मित किया जिसके राज्य में किसी तरह की व्यवस्था न हो और जहाँ का राजा चौपट हो। चौपट का तात्पर्य है बुद्धिविहीन, जो कुछ भी सही ढंग से करने की क्षमता नहीं रखता। अंधेर नगरी में भी एक राजा है जो इस लोकोक्ति के अनुरूप ही बुद्धिविहीन है। लेकिन क्या ऐसा बुद्धिविहीन राजा नाटक का नायक माना जा सकता है? राजा का नाटक में पहली बार उल्लेख दूसरे अंक में आता है। बाजार में घूमते हुए गोबरधनदास को हर चीज टके सेर के भाव से बिकती दिखाई देती है तो वह हलवाई से मिठाई खरीदते हुए पूछता है कि 'इस नगरी का नाम क्या है?' और यहाँ के 'राजा का क्या नाम है?' जवाब में हलवाई बताता है नगरी का नाम 'अंधेर नगरी' और राजा का नाम चौपट राजा है। हलवाई के बताए इस परिचय से ही साफ जाहिर हो जाता है कि नगर और राजा दोनों को नाटककार ने प्रतीक के रूप में ही लिया है। राजा का एक पात्र के रूप में पदार्पण चौथे अंक में होता है। राज सभा में राजा मौजूद है और साथ में राजा के मंत्री और दूसरे नौकर भी हैं। एक फर्यादी को पकड़कर लाया जाता है, वह अपनी फरियाद सुनाता है। इस अंक में मुकदमे की कार्रवाई चलती है और राजा अंत में कोतवाल को फाँसी देने का फैसला देता है। इसके बाद फिर राजा का आगमन छठे अंक में होता है जिसमें सारी कार्रवाई श्मशान में घटित होती है। यानी कि कुल छह अंकों में से दो अंकों में राजा आता है और उनमें भी सिर्फ एक अंक में राजा पूरे समय सक्रिय रूप से मंच पर गतिविधि करता हुआ नज़र आता है। आखरी अंक में सिर्फ राजा के द्वारा केवल तीन संवाद बोलवाए गए हैं। इस प्रकार राजा पूरे प्रहसन में छह अंक में से केवल एक अंक में ही उपस्थित होकर क्या प्रहसन का नायक कहा जा सकता है? यह जरूर है कि नाटक के मूल कथ्य के साथ राजा का गहरा संबंध है क्योंकि अंधेर नगरी का वह राजा है और उसकी जनविरोधी और अविवेकपूर्ण प्रवृत्ति से ही कथ्य में वह अर्थ व्यक्त हुआ है जो लेखक का ध्येय है। राजा का चरित्र प्रहसन में जिस तरह चित्रित किया गया है, वह नायकों के किसी वर्गीकरण के अनुसार नहीं है। इसके विपरीत उसका चरित्र विदुषक की तरह है जबकि संस्कृत नाटकों में विदुषक नायक का सहायक पात्र होता था और जिसका मकसद नायक का मनबहलाव करना होता था।

जहाँ तक मंत्री का सवाल है, वह राजा के साथ-साथ ही नाटक में उपस्थित होता है। वह स्वतंत्र रूप से कुछ करता नज़र नहीं आता, बल्कि राजा के मुख्य सहायक के रूप में ही दिखाई देता है। लेकिन अपनी भूमिका में ही मंत्री राजा से अधिक चतुर और चालाक नज़र आता है और दर्शकों को यह स्पष्ट

हो जाता है कि मंत्री की बुद्धि ही राजा के निर्णयों को निर्धारित कर रही है। आखिरी अंक में जब फाँसी चढ़ने की होड़ लगती है तब मंत्री भी फाँसी चढ़ने के लिए तैयार हो जाता है। यह कृत्य उसके चालाक चरित्र से मेल नहीं खाता। इसके बावजूद मंत्री नाटक के केंद्रीय चरित्र के रूप में नज़र नहीं आता।

प्रहसन के अन्य दो प्रमुख चरित्र हैं गोबरधनदास और महंत। गोबरधनदास महंत का शिष्य है। महंत और उसके दो शिष्यों नारायणदास और गोबरधनदास के साथ ही नाटक की कथा आरंभ होती है। पहले अंक में महंत अपने इन दोनों शिष्यों के साथ शहर के बाहरी हिस्से में पहुँचता है। महंत उन्हें उस नगर में भिक्षा मांगने के लिए भेजता है। दूसरे अंक में बाज़ार का दृश्य है, जहाँ गोबरधनदास आश्चर्य चकित सा बाजार को देख रहा है और अंत में उसकी हलवाई के साथ बातचीत होती है, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। तीसरे अंक में फिर महंत और गोबरधनदास का वार्तालाप है। गोबरधनदास महंत को नगर के बारे में बताता है और उनसे प्रार्थना करता है कि वे इसी शहर में स्थाई निवास बना ले। लेकिन महंत जल्द से जल्द शहर से दूर चले जाने की बात कहता है। गोबरधनदास नहीं जाता और वहीं रह जाता है। पाँचवें अंक में गोबरधनदास को राजा के सिपाही पकड़ ले जाते हैं और छठे में उसे फाँसी पर चढ़ाने की तैयारी होने लगती है। इस प्रकार चौथे अंक को छोड़कर गोबरधनदास नाटक के आरंभ से लेकर अंत तक मौजूद रहता है। कथा का प्रवाह भी उसी के साथ-साथ विकसित होता है, और कथा की परिणति भी उसी के साथ होती है। इसलिए इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि गोबरधनदास अंधेर नगरी का केंद्रीय चरित्र है। लेकिन इसी वजह से वह अंधेर नगरी का नायक बनने की योग्यता हासिल नहीं कर सकता। वस्तुतः उसमें नायक जैसा कुछ भी नहीं है परिस्थितियों से संचालित वह अपनी भावनाओं और इच्छाओं के वशीभूत रहता है और उसके व्यक्तित्व में स्वतंत्र रूप से सोचने और करने जैसा कोई गुण नहीं दिखाई देता। महंत का व्यक्तित्व अवश्य बुद्धिमान और चालाक नज़र आता है और अंत में गोबरधनदास को मुक्ति भी महंत की चतुराई से ही मिलती है। लेकिन पूरे प्रहसन में उसकी भूमिका अत्यंत सीमित रहती है। उपर्युक्त विवेचन से यह साफ हो जाता है कि अंधेर नगरी का कोई पात्र उसका नायक नहीं कहा जा सकता। यह वस्तुतः ऐसा रूपक है जिसमें प्रत्येक पात्र कुछ विशेष प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में आते हैं और उनको इसी रूप में देखा जाना चाहिए।

'प्रहसन' की परिभाषा में तीसरी बात भारतेन्दु ने यह लिखी थी कि इसमें 'अनेक पात्रों का समावेश हो सकता है।' इस दृष्टि से विचार करने पर हमें इसमें अनेक पात्रों का समावेश अत्यंत सोद्देश्यपूर्ण प्रतीत होता है। व्यक्ति के तौर पर भले ही उनमें चारित्रिक विशिष्टता का अभाव झलकता हो, लेकिन प्रहसन की पूरी संरचना में सभी पात्र किसी न किसी रूप में मदद करते हैं। वस्तुतः यह चरित्र प्रधान नाटक नहीं है। लेकिन इनमें पात्रों की सृष्टि काफी सोच-विचार कर की गई है। ऊपर हमने जिन चार पात्रों का उल्लेख किया है, उनके अलावा भी जो पात्र प्रहसन में आए हैं, वे नाटक की कथावस्तु के अर्थ को या तो विस्तार देते हैं या नया आयाम देते हैं। उदाहरण के लिए दूसरे अंक में बाज़ार के दृश्य में चूरन वाले, नारंगी वाले, हलवाई, कुंजड़िन, मुगल, पाचक वाला, मछली वाली, ब्राह्मण, बनिया आदि विभिन्न पात्र मंच पर आकर सिर्फ अपने संवाद बोलते हैं और प्रायः सभी के संवाद पद्य में हैं लेकिन इन संवादों में भारतेन्दु ने तीखे व्यंग्य का जो पुट दिया है, वह न तो इन पात्रों को सिर्फ बाजार में बैठे विक्रेता रहने देता है और न ही वे सिर्फ चीज़ें बेचते नजर आते हैं। मसलन, चूरन बेचने वाला घासीराम चूरन बेचने की गुहार लगाते-लगाते अंत में कहता है: 'चना हकिम सब जो खाते / सब पर दूना टिकस लगाते।' या इसी तरह कुंजड़िन कहती है, 'ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैरा' और दूसरे पात्र के संवादों में भी इसी तरह दो-चार पंक्तियों के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। व्यंग्य की इसी शक्ति का उपयोग पात्रों को प्रभावशाली रूप में पेश करने के लिए निर्देशक कर सकता है।

भारतेन्दु ने प्रहसन को परिभाषित करते हुए एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह कही है कि 'यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते।' अंधेर नगरी भी एक अंक का प्रहसन नहीं है। इसमें कुल छह अंक हैं लेकिन प्रत्येक अंक में दृश्यों का विभाजन नहीं है। उपर्युक्त कथन में भी अंक और दृश्य के बीच के भेद को महत्व नहीं दिया गया है। प्रायः अंकों का विभाजन कथ्य में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार होता है। इस दृष्टि से विचार करें तो इस प्रहसन के सभी छह अंकों में कथा अलग-अलग स्थानों पर घटित होती है। काल की दृष्टि से इनमें बहुत अधिक अंतराल नहीं है।

कथावस्तु के विकास को समझने के दो तरीके हो सकते हैं। संस्कृत नाट्य परंपरा के अनुसार कथावस्तु में कार्य की पाँच अवस्थाएँ मानी गई हैं : आरंभ, प्रयत्न, प्राप्तयाशा, नियताप्ति और फलागम। अंधेर नगरी की कथावस्तु की योजना इस दृष्टि से नहीं की गई है। गोबरधनदास को इस प्रहसन का केंद्रीय चरित्र मानें तो उसका अंधेर नगरी में रहने का निश्चय किसी महान् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नहीं है। वह इस लालच में वहां रुकने का निर्णय करता है कि उसे अच्छी भीख मिलेगी और हर चीज टके सेर होने की वजह से उसे तरह-तरह के पकवान खाने को मिलेंगे। इस तरह उसका जीवन आनंद से गुजरेगा। जब राजा के सिपाही उसे पकड़ के ले जाते हैं तब उसे ऐसा कुछ घटित होने की बिल्कुल आशंका नहीं होती। इस प्रकार वह अप्रत्याशित रूप से संकट में फंस जाता है अगर हम पश्चिमी नाट्य परंपरा की दृष्टि से विचार करें तो यह प्रहसन उसके नियमों का पूरी तरह अनुकरण नहीं करता लेकिन उसके अपेक्षाकृत ज्यादा नज़दीक है।

इस प्रहसन की कथा को आरंभ, विकास और अंत के रूप में विभाजित किया जा सकता है। अंधेर नगरी के पहले तीन अंक वस्तुतः कथा के आरंभ के रूप में देखे जा सकते हैं। अंक चार में कथा का विकास होता है। पाँच में कथा चरम बिंदु पर पहुँचती है और छह में कथा की परिणति होती है। इस दृष्टि से अंधेर नगरी की कथावस्तु का संबंध गोबरधनदास नामक एक साधू से है, जो अपने गुरु की सलाह के विरुद्ध अंधेर नगरी में रुकने का फैसला करता है और इस तरह दर्शकों के सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि गोबरधनदास के रुकने का क्या परिणाम होगा? महंत की चेतावनी का क्या मतलब है? ऐसे नगर में जहां हर चीज टके सेर बिकती हो, वह किस तरह का नगर है? हमें इन अंकों का विभाजन उस रूप में भी नहीं दिखाई देता जैसा अंको का होना चाहिए। पहले अंक में महंत और दोनों शिष्य अंधेर नगरी के बाहरी हिस्से में पहुँचते हैं और महंत उन्हें शहर में भिक्षाटन के लिए भेजता है। दूसरे अंक में बाजार का दृश्य है। इस अंक का बड़ा हिस्सा पहले अंक से काफी स्वतंत्र है। विचार किया जाए तो इस अंक में हमें शिष्य भीख मांगते नहीं दिखाए गए हैं। भीख वे मांग चुके हैं इसकी सांकेतिक सूचना हमें मिलती है। गोबरधनदास बाजार का पूरा दृश्य देखने के बाद हलवाई से मिठाई खरीदता है। अंक के अंतिम संवाद से मालूम पड़ता है कि भिक्षा मांगने का काम पहले ही किया जा चुका है। 'बच्चा भिक्षा माँगकर सात पैसे लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु-चेले सब आनंदपूर्वक इतने में छक जायेंगे' कहानी में पहला महत्वपूर्ण मोड़ आता है जब गोबरधनदास तीसरे अंक में आकर महंत को सारा घटनाक्रम बताता है। उसकी बात सुनकर महंत की प्रतिक्रिया होती है 'ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है जहां टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा हो।' लेकिन गोबरधनदास के गले महंत की बात नहीं उतरती। वह कहता है : 'गुरुजी, ऐसा तो संसार-भर में कोई देस ही नहीं है। दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है। मैं तो इस नगरी को छोड़कर नहीं जाऊँगा। और जगह दिन भर माँगो तो भी पेट नहीं भरता। बरंच बाजे-बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सो मैं तो यही रहूँगा।' जब महंत के समझाने के बावजूद गोबरधनदास नहीं मानता तो महंत दूसरे शिष्य के साथ यह कहते हुए चला जाता है कि '.....मैं तो जाता हूँ। पर इतना कहे जाता हूँ कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।' महंत का यह कथन कई संकेत छोड़ जाता है। गोबरधनदास जिस लालच के वशीभूत होकर रुका है, वह उसे संकट में अवश्य डालेगा और उस संकट से महंत ही उसे उभारेगा, इसका पूर्व संकेत हमें महंत के उक्त कथन से मिल जाता है। लेकिन दर्शकों के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है कि गोबरधनदास क्या सचमुच संकट में पड़ेगा? संकट किस कारण से आएगा और महंत उसे संकट से उबार पाएगा या नहीं? उभारेगा भी तो कैसे?

लेकिन प्रहसन के चौथे अंक में कथा से गोबरधनदास गायब हो जाता है। इसमें राज सभा का दृश्य है। विलासी और मूर्ख किस्म के राजा से हमारा साक्षात्कार होता है। जो नशे में धुत है और सेवक की आवाज़ से डर कर चौंक उठता है। कुछ ही संवादों के बाद राजा के सामने एक फरियादी लाया जाता है जो राजा से न्याय मांग रहा है। कल्लू बनिया के घर की दीवार ढहने से फरियादी की बकरी दबकर मर गई है, वह उसी का न्याय मांग रहा है। स्पष्ट ही मामला इतना संगीन नहीं है कि उसे राजा के सामने प्रस्तुत किया जाए, लेकिन विडंबना यह भी है कि राजा के सम्मुख इसी तरह के मामले पेश किए जाते हैं। राजा कल्लू बनिये की दीवार को पेश करने का आदेश देता है। दीवार पेश नहीं हो सकती, इसलिए कल्लू बनिया को पेश किया जाता है। हर व्यक्ति अपना कसूर मानने की बजाए किसी दूसरे को कसूरवार ठहराता है और अंक के अंत में राजा मंत्री के सुझाव के अनुसार शहर कोतवाल को फांसी की सजा सुना देता है। इस अंक की कथा का गोबरधनदास से कोई संबंध प्रत्यक्ष रूप में दिखाई नहीं देता। लेकिन कोतवाल को फांसी दिए जाने के साथ इस अंक की समाप्ति से दर्शकों को यह

आभास होने लगता है कि मामला गंभीर हो सकता है। दीवार गिरने से कोतवाल को फाँसी देने वाले राजा के राज्य में कुछ भी घटित हो सकता है। चौथे अंक की समाप्ति कहानी को चरमोत्कर्ष की ओर ले जाती है।

चौथे और पाँचवें अंक के बीच कुछ और घटनाएँ घटती हैं लेकिन उसको नाटक की कथावस्तु का हिस्सा नहीं बनाया गया है। इसकी सूचना हमें पाँचवें अंक के संवादों से मिलती है। पाँचवें अंक में राजा के सिपाही गोबरधनदास को पकड़ के ले जाते हैं। गोबरधनदास जब सिपाहियों से पूछता है कि उसे क्यों ले लाया जा रहा है तो पहला सिपाही जवाब देता है और उसके जवाब से ही मालूम पड़ता है कि उसे फाँसी के लिए ले जाया जा रहा है क्योंकि 'फाँसी का फन्दा बड़ा' है और 'कोतवाल साहब दुबले हैं।' अब न्याय का तकाजा है कि 'बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी जरूरी है, नहीं तो न्याय न होगा।' गोबरधनदास को अब समझ आता है कि क्यों गुरुजी ने इस नगर में रुकने से मना किया था। वह अपने प्राण बचाने के लिए गुरुजी को पुकार उठता है। इस प्रकार पाँचवाँ अंक चरमोत्कर्ष की ही स्थिति में समाप्त हो जाता है। छठा और आखरी अंक में नाटक का सुखद अंत होता है। गुरुजी की चतुराई से सिर्फ गोबरधनदास ही नहीं बचता स्वयं राजा स्वर्ग की लालसा में फाँसी पर चढ़ जाता है। इस प्रकार दर्शकों की इस जिज्ञासा का समाहार हो जाता है कि गोबरधनदास का अंधेर नगरी में रहने का फैसला क्यों गलत था। और इसी क्रम में उनके सामने अंधेर नगरी का वास्तविक अर्थ भी उद्घाटित हो जाता है।

3.3 'अंधेर नगरी' के नाट्यशिल्प की विशेषताएँ

अंधेर नगरी का नाट्यशिल्प अत्यंत लचीला, सरल, आकर्षक और गत्यात्मक है। भारतेन्दु ने इसमें किसी एक प्रकार के परम्परागत अथवा आधुनिक शिल्प का प्रयोग नहीं किया है बल्कि नाटक को रूढ़ियों से, एक प्रचलित ढाँचे से मुक्त किया है। यह भारतेन्दु की निरंतर नवीन ग्रहण-वृत्ति और रचना-वृत्ति को स्पष्ट करता है। अंधेर नगरी की पूरा कथावस्तु पाँच अंकों में विभाजित है और इन अंकों में कोई दृश्य विधान नहीं है। इस नाटक में भारतेन्दु की विशेषता उन अंकों या दृश्यों की कल्पना, उनके संयोजन और उनकी नाटकीयता में है। आप जानते हैं कि प्रायः श्रेष्ठ नाटककार ऐसे नाटकीय व्यंग्य को लेता है जिस पर पूरे नाटक का ढाँचा खड़ा होता है। अंधेर नगरी में भी गहरी व्यंग्यमूलक नाटकीय स्थिति इस प्रश्न से जुड़ती है कि दीवार किसके कारण गिरी? क्या वह अपराध सिद्ध हुआ? क्या न्याय मिला? क्या अपराधी बस खोजा जाता रहा? नाटकीय स्थिति की विशिष्टता और व्यंग्यात्मकता नाटक को आद्यंत चुस्त और लयात्मक सौंदर्य से युक्त बनाए रखती है। इसका लीचला शिल्प इसे यथार्थपरक भी बनाता है और शैलीबद्ध भी। हमेशा नए आस्वाद की संभावनाओं का यह सदाबहार नाटक कहा जा सकता है।

अंधेर नगरी के कथानक की बुनावट में खुलापन और ताज़गी है। बाज़ार दृश्य और दरबार दृश्य इसके अमूल्य नाटकीय दृश्य (अंक) हैं। सत्ता की अंध-व्यवस्था, विवेकहीनता, मूल्यहीनता का परिचय इन दो दृश्यों से मिलता है। बाज़ार का दृश्य पूरे देश के स्तर पर, सस्तेपन, विकृति, आडम्बर, अमानवीयता, शोषण और संवेदनहीनता को व्यक्त करता है। चना ज़ोर गरम बेचने वाले घासीराम के शब्दों में 'चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।' कुंजड़िन सब्जी बेचते-बेचते अंत में जब यह कह देती है कि 'ले हिंदुस्तान का मेवा-फूट और बैर' तो सारा सब्जी बाज़ार व्यंग्यात्मक अर्थ की व्यापकता में बदल जाता है। पाचक वाले की पंक्तियाँ, महाजन, एडीटर, बनिये, नाटक वाले, पुलिस सब पर प्रहार करती हैं। जो केवल ब्रिटिश शासक तक ही सीमित नहीं है और इन सबके बीच में भारतेन्दु जात वाले ब्राह्मण को टके में जात बेचते दिखा देते हैं तो सारी मूल्यहीनता और संवेदनशून्य स्थिति साकार हो जाती है। चौथा अंक राजनीतिक कार्यरवाइयों के खोललेपन, न्याय-प्रक्रिया के अमानवीय रूप और आम आदमी की पीड़ा में उलझी स्थितियों को दिखाता है। इसमें गति, क्रियाओं, लयों की अनंत संभावनाएँ हैं। शिल्प का यह लचीलापन निर्देशकों को आकृष्ट करता रहा है। अंधेर नगरी जैसे नाटक में पात्रों के चरित्र-चित्रण की अलग से कोई आवश्यकता नहीं होती। इसमें यद्यपि कई पात्र हैं लेकिन मुख्यतः महन्त, गोबरधनदास, मंत्री और राजा - ये चार विशेष पात्र हैं क्योंकि यही कथानक का आरंभ, विकास और अंत करते हैं - यही सत्ता-लोलुपता, लोभवृत्ति और नीति-उपदेश के प्रतीक हो जाते हैं। इन्हीं से नाटक की कथा और उसका लक्ष्य सम्प्रेषित हो जाता है। नाटकीय व्यापारों के चयन और संयोजन की कुशलता की दृष्टि से अंधेर नगरी विशिष्ट रचना है, पात्र उसी के अनिवार्य अंग हैं।

अंधेर नगरी के नाट्य-शिल्प की विशेषता उसमें अंतर्निहित लोकधर्मी चेतना है। उसका खुलापन, गायन, नृत्य, काव्य, संवाद-उच्चारण, भाषा, अभिनय-शैली, गति-संचार - सब लोक नाटकों जैसा है। चौथे अंक/दृश्य को आप पूर्णतः स्वांग के रूप में देख सकते हैं। संगीत, काव्य धुनों के प्रयोग में रचना के आवेग और उत्तेजना में आप इसे नौटंकी जैसा पाएंगे। नाटक के संघटन में लचीलापन इतना है कि पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान नाटककार की तरह नहीं, निर्देशक अपनी कल्पनानुसार कर लेता है। जन-समूह की चेतना और रुचि संस्कार का प्रभाव नाटक में है। कार्य की जिस त्वरित गति को, बात कहने की सर्वथा मौलिक निजी शैली को भारतेंदु ने पकड़ा है, वही अंधेर नगरी को कालजयी बनाता है। 'नाटक देखहु सुख पायी' यह अवधारणा, दर्शक की उपस्थिति का अहसास अंधेर नगरी के शिल्प को न भारी भरकम बनाता है, न अतिनाटकीय और न ही अतिरंजनापूर्ण स्थितियों का घटना-प्रधान नाटक।

यह भारतेंदु के कथा-विन्यास, संयोजन और संरचना का ही वैशिष्ट्य है कि इतनी संक्षिप्त कथा और प्रसंगों को लेकर नाटकीय स्थितियों और दृश्यों की रचना और संयोजन वह इस प्रकार करते हैं कि एक ओर रोचकता और जिज्ञासा बनी रहती है, दूसरी ओर, अपराधी की खोज और फरियादी के न्याय पर भी ध्यान केंद्रित रहता है। बाज़ार और राजसभा के दृश्य की संरचना बहुत कठिन है। दोनों में बिखराव, एकरसता, पुनरावृत्ति दोष, मिथ्या चमक-दमक आ सकती थी पर आप देखेंगे कि ये दोनों दृश्य संकेतात्मकता, व्यंग्यात्मक टोन और प्रस्तुति पद्धति को किस तरह नई कल्पना और विस्तार देते हैं। भारतेंदु ने बेचने वालों के क्रम, उनकी शब्दावली, उनके निजी टोन और लय के अंतर और स्तर-भेद को बनाए रखा है। कबाब वाला मंच पर आकर सहसा बाज़ार दृश्य की संरचना करता है। भारतेंदु ने बाज़ार के दृश्य में संवादों के लिए लोक-प्रचलित पद्यात्मक पद्धति ली है। पुरुष और स्त्री स्वरों के क्रम से इस दृश्य का आकर्षण बढ़ाया गया है, आप अनुभव कर सकते हैं कि मुगल और जात वाला ब्राह्मण अपने प्रस्तुत क्रम से कहीं पहले एकदम शुरू में ही रखे गए होते तो वह व्यंग्य न उभरता। जाति बेचने की अत्यंत रोचक संरचना सारी पृष्ठभूमि बन जाने के कारण ही सार्थक हुई है। भारतेंदु ने अगर हलवाई, मुगल, जातवाला को अधिक विस्तार और निरंतरता दी है तो वह उनकी नाट्य-रचना का कौशल है। कथा-विन्यास में चुस्ती, संगठन का तारतम्य, आंतरिक व्यंजनाएँ अंधेर नगरी को एक 'पूर्ण नाटक' बनाती हैं। अब आप यह समझ सकते हैं कि राजसभा का दृश्य एक ही स्थान का दृश्य होते हुए भी बोझिल न होकर व्यंजनात्मक इसलिए बनता जाता है क्योंकि उसमें निरंतर नए-नए पात्रों का प्रवेश-प्रस्थान, प्रश्न-उत्तर चलते रहते हैं जिससे परिवर्तनशील गत्यात्मक स्थितियाँ बनी रहती हैं। यथार्थवादी शिल्प अथवा शास्त्रीय शिल्प के चक्कर में न पड़कर लोक-नाट्य की उन्मुक्त शैली के अनुभव और प्रयोग के कारण ही यह दृश्य इतना चुस्त बन पड़ा है। हर दृश्य, हर स्थिति अपने सही अनुपात में है जिसका मुख्य कारण लोकधर्मिता है। अंधेर नगरी का नाट्यशिल्प लोक-नाटकों से प्रेरित माना जा सकता है। मुख्य बात यह है कि इसके नाट्य-शिल्प में भारतेंदु किसी विशेष पद्धति का अनुसरण नहीं करते, न मात्र प्रभाव ग्रहण करते हैं। उन्होंने अपनी मौलिक रचनाशीलता से एक लोकोक्ति को पूर्ण नाटक का संगठित शिल्प दिया है जिसके पीछे सांस्कृतिक चेतना और परम्परागत आधार है - साथ ही नाटककार की युगानुरूप दृष्टि भी। शिल्प का यह सौंदर्य उनकी भाषा की क्रियात्मकता और नाटक के रूप-विधान की स्वतंत्रता के कारण आ सका है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

3.4 'अंधेर नगरी' का रूप-विधान

जैसा कि आपको बताया गया है, अंधेर नगरी का शिल्प मौलिक और लचीला है। परिणामस्वरूप उसका रूप-विधान सरल, सहज, लचीला और विलक्षण है क्योंकि भारतेंदु ने उसकी रचना किसी एक प्रकार के रूप-विधान में बंधकर नहीं की है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे प्रहसन कहा गया है। स्वयं भारतेंदु ने इसे प्रहसन की संज्ञा दी है और प्रहसन का शास्त्रीय लक्षण भी दिया है पर अपने 'नाटक' नामक निबंध में प्रहसन के संदर्भ में वह यह भी लिखते हैं कि 'यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किंतु अब अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते।' यही भारतेंदु की स्वतंत्र, सजग और मौलिक दृष्टि है जिसके कारण वह अंधेर नगरी में परम्परागत नियमों को स्वीकार तो करते हैं किंतु उसके रूप-विधान में युगानुरूप नवीन प्रयोग करने से भी नहीं हिचकते। इस नाटक के छह अंक अपने वस्तु-चयन, संयोजन और चरम उत्कर्ष में उल्लेखनीय हैं। इसका नाटकीय दृश्य-विधान सरल युक्तियों के साथ चरमोत्कर्ष तक अनायास पहुँचता है। अंधेर नगरी को दृष्टांत शैली का नाटक भी कहा जा

सकता है। जिज्ञासा-समाधान शैली में भारतेंदु एक दृष्टांत का सहारा लेते हुए एक सच्चे अनुभव को प्रमाणित करना चाहते हैं। आपको यह भी बताया गया कि भारतेंदु की मूल चेतना लोकधर्मिता की है अतः **अंधेर नगरी** के रूप-विधान में लोक नाटक जैसा खुलापन, स्वाभाविकता और ताज़गी है। **अंधेर नगरी** की रचना सामान्य जनसमुदाय के लिए लोक परंपरा से कथानक लेकर की गई है जिसमें जनमानस की संवेदना भी निहित है और जन-संस्कार भी। उत्तर प्रदेश के स्वांग और नौटंकी जैसे प्रसिद्ध लोक-नाटकों की पद्धति **अंधेर नगरी** में है पर उनका यथावत् अनुकरण नहीं। दृश्य-परिवर्तन का लचीलापन, पात्रों का प्रवेश-प्रस्थान, संवाद-रचना, काव्य और संगीत, तीव्रता, भंगिमाएँ, नाटक का अंत सब लोक-नाटकों जैसा है। उसमें दृश्यों का जो तारतम्य है, जो अभिनय शैली है, दर्शकों से जो सीधे साक्षात्कार है और प्रवाह है वह लोक चेतना और लोक संस्कृति से जुड़ा है। इसीलिए यह नाटक देश की किसी भी लोक-नाट्य शैली में प्रस्तुत किए जाने का लचीलापन रखता है।

अंधेर नगरी में पारसी नाट्य-शैली में निहित कार्य-व्यापार की तीव्रता, नाटकीयता, उत्तेजना और मनोरंजकता भी है। पारसी नाटकों का विरोध करते हुए भी भारतेंदु जनमानस को प्रभावित करने वाले उसके तत्त्वों के प्रति सजग थे। उनका मुख्य लक्ष्य था - जनजागरण और हिंदी नाट्य-कला का सृजनात्मक विकास। बाज़ार दृश्य का उत्तेजनात्मक आवेग अगर एक ओर नौटंकी की याद दिलाता है तो दूसरी ओर पारसी नाटक की।

अपने रचना-विधान में **अंधेर नगरी** इसलिए भी विलक्षण नाटक लगता है कि उसमें असम्बद्ध स्थितियाँ हैं - बाज़ार, राजसभा, श्मशान के दृश्यों में और पात्रों में कोई सम्बन्ध नहीं है, दृश्यों में क्रमबद्धता नहीं है। उनमें न निश्चित पात्र हैं, न उनका कोई व्यक्तित्व है, न विकास के अवसर। उनकी बातचीत बेतुकी है। सब असंगत (एब्सर्ड) नाटक जैसा लगता है। पूरी नगरी और उस नगरी में होने वाले सारे कार्य सनक-भरे लगते हैं। इसलिए अपनी संरचना में कभी-कभी यह एब्सर्ड नाटक जैसा लगने लगता है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि **अंधेर नगरी** का रूप-विधान किसी विशेष पद्धति में बंधा नहीं है। उसमें हमारी परम्पराएँ और आधुनिक चेतना, जन-समूह की शक्ति समन्वित है। **अंधेर नगरी** में 'भारत दुर्दशा' या अपने अन्य किसी नाटक की तरह भारतेंदु ने न मंगलाचरण किया है, न प्रस्तावना और भरतवाक्य। लेकिन वही कार्य महन्त और चेलों के भजन से और अंत में महन्त के दोहे से कराया है जिसका उद्देश्य वन्दना या प्रार्थना नहीं है, न मंगलाचरण। लेकिन नाटकीय उद्देश्य में दोनों सहायक होते हैं। रूढ़ियों से मुक्ति ही इस नाटक के रूप-विधान का मूल सौंदर्य है।

आप देख चुके हैं कि किस प्रकार **अंधेर नगरी** का कथा-विन्यास तारतम्य, प्रवाह, चुस्ती और आंतरिक व्यंजनाएँ लिए हुए है। नाट्य-संरचना में **अंधेर नगरी** नया सर्जनात्मक मोड़ लाता है, नाटक के नवीन सौंदर्यबोध को उजागर करता है। कथानक के साथ पात्रों के चरित्र-चित्रण को लेकर भी भारतेंदु की दृष्टि सजग है। शास्त्रीय नियमों का ज्यों का त्यों अनुसरण न करके वह हिंदी की प्रकृति और युग की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन चाहते हैं। चरित्र-चित्रण के लिए वे मनुष्य स्वभाव के सूक्ष्म निरीक्षण और अनुभव को, गंभीर आलोचना-दृष्टि को महत्वपूर्ण मानते हैं। इसलिए **अंधेर नगरी** के पात्र नाटककार के आत्ममोह से ग्रस्त, जड़ और आत्मकेंद्रित नहीं हैं, वे वर्गों और प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि अधिक हैं। इन पात्रों को शास्त्रीय आधारों पर नहीं देखना चाहिए। यहाँ पात्र परिकल्पना, पात्रों का चयन पूर्व निर्धारित नहीं लगते। ये पात्र सोद्देश्य और जीवन्त हैं और हमारे बीच के हैं। इन पात्रों की संरचना किसी चौखटे में बंधी नहीं है। नवीन व्यंजनाओं और समकालीन चेतना पर गहरी पकड़ के कारण महन्त भी निर्धारित ढाँचे का साधु या उपदेशक मात्र नहीं लगता। वह लोक से जुड़ा पात्र है। गोबर्धनदास **अंधेर नगरी** का प्रत्यक्षदर्शी, भोक्ता है जो अंधव्यवस्था, अंधन्याय का शिकार होता है। नाटकीय मोड़ों और नाटकीय परिणति का द्रष्टा यह पात्र लोभवृत्ति का प्रतीक है। वह आम आदमी है। नाटकीय व्यंग्य का अमूर्त पात्र बकरी भी है जो सारी न्याय-व्यवस्था को मूर्त करती जाती है। राजा और मंत्री फूहड़पन के साथ शासन-तंत्र, और नौकरशाही प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। यहाँ न धीरोदात्त नायक है, न धीरोद्धत मानव विरोधी विध्वंसक तत्त्व हैं।

आपको यह समझना है कि **अंधेर नगरी** में इन प्रतीक पात्रों के अलावा, अन्य सब पात्र मिलकर एक पूरे समूह की रचना करते हैं जो समूह चेतना को वहन करते हैं। आप पाएंगे कि ये जन-पात्र हैं जिनका उपयोग दृश्य-संरचना, संयोजन के लिए भी किया गया है, व्यंग्यार्थ के लिए भी, जनसंघर्ष और जनशक्ति के लिए भी। ये पात्र सभी जातियों, वर्गों के हैं। ये पात्र वैयक्तिक विशेषताओं से युक्त होते हुए भी व्यक्ति चरित्र नहीं हैं, अतः उनकी चारित्रिक रेखाएँ यहाँ महत्वपूर्ण नहीं हैं, मुख्य है उनकी

समकालीन अर्थ-व्यंजनाएँ। अपने-अपने मूल स्वभाव में आते हुए भी वे संश्लिष्ट, व्यंजक और जीवित पात्र हैं। इतने बड़े समूह को छोटे से नाटक में संभालना तथा वाक्-चातुर्य, जन-संस्कार, अर्थ-सौंदर्य और अभिनयात्मकता से तराशना भारतेंदु की पात्र-सृष्टि और रचना-विधान की मौलिकता का प्रमाण है जिसमें अंधेर नगरी की नाट्य-भाषा, संवाद-रचना और रंगमंचीय कौशल का भी महत्वपूर्ण योगदान है जिसपर आगे विचार किया जा रहा है।

3.5 भाषिक प्रयोग

भाषा कोई बना-बनाया ढाँचा, निर्धारित और स्थूल वस्तु नहीं है, उसे तो नाटककार नया अर्थ और नया संस्कार देता है। अंधेर नगरी की भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा है, सीधी और सरल है पर नितांत सामान्य दीखते हुए भी विलक्षण है। यह भाषा जहाँ यथार्थ का भ्रम पैदा करती है, वहीं नाट्य तत्व इनमें शब्द को क्रिया दे रहा है। दृश्य-तत्व, ऐन्द्रिक अनुभव, बिम्बात्मकता, व्यंजना और संकेत देकर प्रचलित भाषा की पुनर्रचना कर रहा है। अंधेर नगरी में शब्द का अलग से महत्व नहीं है - उस समय प्रभाव का है जो उससे ध्वनित होता है - यह ही अंधेर नगरी की विशेषता है। उसका समय प्रभाव और व्यंजनाएँ विश्व स्तर पर होने वाले परिवर्तनों और व्यवस्था-चक्र के साथ और अधिक सटीक होते जाने के कारण शाश्वत सौंदर्य से युक्त है।

भारतेंदु का हर नाटक भाषा के वैशिष्ट्य के कारण विश्वसनीय लगने लगता है। अपने प्रत्येक नाटक के लिए वह भिन्न प्रकार की भाषिक संरचना का प्रयोग करते हैं, शब्दों का भिन्न ढंग से संयोजन करते हैं और उनकी वाक्य-रचना का तरीका भी बदल जाता है। भाषा की बनावट से ही वह अपने नाटक को 'साहित्यिकता से मुक्ति' देते हैं। अंधेर नगरी में आप देखेंगे कि उसकी भाषा कृत्रिम और आरोपित नहीं है, उसमें नाट्य तत्व प्रमुख है और भाषा स्वतःस्फूर्त ढंग से जीवन के बीच से रची हुई लगती है। हिंदी उस समय बन ही रही थी और उसमें उर्दू, अंग्रेज़ी, देशज शब्दों, प्रादेशिक भाषाओं, स्थानीय बोलियों के शब्दों का मिश्रण था। मुहावरे थे पर उसी हिंदी को भारतेंदु इस नाटक में इतना सार्थक, सर्जनात्मक नाट्य-भाषा में ढाल देते हैं - यह उनकी मौलिकता और रंगानुभूति का परिणाम है। उनके 'नाटक' निबंध को पढ़कर आप जान सकते हैं कि नाटक की भाषा में वाचालता की अपेक्षा मितभाषिता को वह ज्यादा महत्व देते हैं। नाटक में वाक्-प्रपंच नहीं चाहिए, थोड़ी-सी बात में अधिक भाव व्यक्त करना ही उन्होंने नाटक जीवन की महा औषधि माना है। इसके अलावा, वह भाषा के प्रयोग को नाटक की प्रकृति, उसके स्वरूप, उसके वातावरण और चेतना की माँग से जोड़ते हैं।

अंधेर नगरी नाट्य भाषा का सजीव, तीखा और कलात्मक उदाहरण है। शब्दों को उनकी समयानुकूल अपेक्षित भंगिमा मिलती है। अंधेर नगरी अगर चुटीला, समकालीन यथार्थ से टकराने वाला सदाबहार नाटक है तो उसका श्रेय उसके भाषिक प्रयोग को भी है। वह बनी-बनायी भाषा और क्रूर व्यवस्था में एक साथ हस्तक्षेप करता है। 'टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दे' (जातवाला ब्राह्मण का कथन) में सारे बाज़ार का बाज़ारूपन, अवसरवादिता, जातिवादी दृष्टि अर्थात् भ्रष्ट जगत और सांस्कृतिक अवमूल्यन उजागर हो जाता है। गोबरधनदास के सामने हर चीज़ टके सेर की एक टक-सी बन जाती है जिससे नाटक के भीतर छिपा व्यंग्य तीखा, मुखरित होता जाता है। भाषा पर ज़रा-सा अनुशासन भंग होने पर बाज़ार दृश्य भौंडा हो सकता था पर भाषाधिकार, लोक जीवन और समकालीन अनुभवों में गहरी पैठ ने इस नाटक को सतही प्रहसन और क्षणिक व्यंग्य होने से बचाया है। अतिरंजनापूर्ण प्रयोग है पर अतिरंजना पर आवश्यक पकड़ भी है।

अंधेर नगरी की भाषा के महत्वपूर्ण गुण अन्य भी हैं जैसे शब्दों की पुनरावृत्ति, लय और टोन। राज-दरबार के दृश्य में दरबारी संस्कृति के विकारों की पुनरावृत्ति, शब्दों को तोड़-मरोड़ और शब्द-प्रयोग में अनेक नाटकीय युक्तियों से उभारा है। इस व्यंजना-सौंदर्य को आप तलाश सकते हैं। आप यह भी पाएँगे कि अंधेर नगरी लोकधर्मी चेतना का नाटक है और उसमें एक काल्पनिक लोक, की सृष्टि की गई है इसलिए उसकी भाषा में एक अद्भुत चमत्कार-सा और यथार्थ के संदर्भ अपने आप घुलते-मिलते चलते हैं। उस भाषा के साथ आप अफसरशाही और अमानवीयता, लोक और भोग की उस नगरी में प्रवेश करते जाते हैं। कभी बनारसी स्पर्श, कभी देशी-विदेशी भाषाओं की छटा से वैविध्य और वैचित्र्य उस भाषा का प्राण-तत्व बनता जाता है। लच्छेदार भाषा, लय और टोन की विविधता से चमत्कार और व्यंजनाएँ दोनों मिलेंगी। नाटककार ने लोक-प्रचलित धुनों और तरीकों से, व्यवहार में आने वाले रोज़ाना

के शब्दों से रोमांचकारी आनंद और व्यंजनाएँ एक-साथ दी हैं। तुकबंदी से, झड़ी लगा देने वाली भाषा से भी पैना व्यंग्य किया है। भारतेंदु ने इस नाटक में जीवित भाषा की, उच्चारित भाषा की लय को पकड़ा है। यही नहीं, पात्र के अनुरूप शब्द-चयन, वाक्य-रचना और उसकी लय आपको आकृष्ट करेगी। कभी-कभी भाषा में बतुकापन, टूटी-फूटी निरर्थक बनावट अपनी अर्थहीनता में एक्सर्ड नाटक की तरह बहुत कुछ कहती है। कभी पारसी नाटकों की भाषा की लय, तुकबंदी, चमत्कार, शैली और आवेग, उत्तेजना भी उसमें अनुभव होती है।

बिम्ब और प्रतीक भी अंधेर नगरी की भाषा को विस्तार देते हैं। बाज़ार का दृश्य और श्रव्य बिम्ब रचना है - राजसभा और फाँसी के दृश्य भी। विशेषता यह है कि ये बिम्ब और प्रतीक भी स्थिर या जड़ नहीं हैं, गत्यात्मक, लचीले और जीवन्त हैं। अंधेर नगरी, राजा, फरियादी सब प्रतीक हैं - भ्रष्ट नगरी, सत्तावादी दमनकारी प्रवृत्ति और आम आदमी के। बाजार पूरा हिन्दुस्तान है। जंगल, श्मशान भी शून्य और कर्मफल पाने के स्थान का प्रतीक है और अमूर्त बकरी तो पूरे नाटक का मूलाधार है। बकरी मानवीय त्रासदी, करुणा, निष्ठा, संवेदना की स्थापना करती है।

वस्तुतः भाषा को मानवीय क्रियाओं, गतियों, ध्वनियों और व्यंजनों से समृद्ध करना भारतेंदु की मौलिकता है। अंधेर नगरी की भाषा में लोक का जीवंत मुहावरा है। उसके हर पात्र का लहजा, स्फूर्ति से पूर्ण और ज़िन्दादिली से युक्त है। उसमें भाषा की भीतरी लय से बहुत काम लिया गया है। जो कविता का छंद है, वही अंधेर नगरी में वाक् छंद है। शब्द का सम्भाव्य अर्थ ही उसे नया बनाता है। यही नहीं, इतने छोटे से नाटक में प्रसंगों, विषयों, छोटे-छोटे दृश्यों में भाषा की लय, टोन, बदलती है। यद्यपि भाषा वही है। गोबरधनदास का लंबा एकालाप भाषा की कसावट के कारण स्वगत जैसा एकरस नहीं लगता क्योंकि उसका स्वर बातचीत का है। इस सारे भाषिक प्रयोग से अंधेर नगरी की संवाद रचना भी गत्यात्मक और नाटकीय व्यंग्य की प्रेरक है। व्यंग्यार्थ और दृश्यात्मक लय की गूँज उसी में मिलती-जुलती है। नाटककार का जो अधिकार भाषा पर है वही सारे गुण आप उनकी संवाद रचना में देख सकते हैं। जिस प्रकृति का पात्र है, भारतेंदु ने उसकी संवाद-रचना और भाषा वैसी ही रची है। जीवन का गहन निरीक्षण उनके पास है। इस प्रकार, अंधेर नगरी में सूचनाओं, विश्लेषण, टिप्पणी, आलोचना और विकास की छूट है। अनंत संभावनाएँ हैं जिनसे उसकी समकालीन प्रासंगिकता बढ़ती जाती है।

3.6 रंगमंचीय प्रस्तुति

जैसा कि आप पहले ही जान चुके हैं, भारतेंदु नाटक शब्द का अर्थ 'रंगस्थ खेल' ही मानते हैं और कहते हैं कि नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। रंगमंच की उनकी सक्रियता, रंगांदोलन की संगठित योजनाओं और संस्कृत मंच, लोकमंच, पारसी रंगमंच और विदेशी एवं बंगला मंच, मराठी मंच का ज्ञान और अनुभव उन्हें बराबर हिंदी रंगमंच के लिए प्रेरित करता था। इसलिए उनके नाटकों में रंगमंच अलग से कोई विचारणीय प्रश्न या विषय नहीं है, वह नाटक में अंतर्निहित है। चूँकि अंधेर नगरी अपनी संवेदना और शिल्प में एक अत्यंत लचीले कलेवर की, रोचक, मुखर, गठी हुई, गत्यात्मक और तीखी चुभन की नाट्य-रचना है इसलिए उसने हिंदी रंगमंच के लिए सार्थक, सर्जनात्मक चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं।

अंधेर नगरी न विशिष्ट और आभिजात्य मंच का नाटक है, न मात्र लोकमंच का। वह न आधुनिक और यथार्थवादी मंच का नाटक है, न पारसी थियेटर का। यह रंगमंचीय प्रकृति की दृष्टि से सबका नाटक है जिसमें प्रबुद्ध, संवेदनशील अनुभवी दर्शक वर्ग से लेकर हज़ारों का जन-समूह और भीड़ आनंद ले सकती है। यह निश्चय ही 'खेल' है। यह स्वतंत्रता के बाद के हिंदी रंगांदोलन की ही महत्वपूर्ण कड़ी नहीं है पर जब से यह लिखा गया तभी से जन-जीवन और रंगमंच के बीचोंबीच है। बल्कि इसका तो लेखन ही रंगमंडली के आग्रह पर शतों-शत रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए ही हुआ। लोकमंच और पारसी रंगमंच की तरह रंगकर्म और नाटककार का यह संबंध ध्यान देने योग्य है। अंधेर नगरी जन-रुचि, मनोरंजन, जन-जागरण, कौतुक को समझने के साथ देश-वत्सलता, समाज-सुधार और युगीन आवश्यकताओं को भी रंगमंच द्वारा पूरा करना चाहता है। इस सोदेश्यता और संश्लिष्टता के बारे में आप आरंभ से जानकारी पाते रहे हैं। ऐसे समय जब न हिंदी भाषा का पूर्ण विकास हुआ था, न नाटक कला का स्वरूप स्थिर हुआ था, न हिंदी में रंगमंच का कोई स्वरूप और शास्त्र था और देश पर विदेशी

शासन था, उस समय हंसी-हंसी में नाटक में इतनी पैनी, सटीक, स्पष्ट शब्दों में बातें कह देना और रंगमंच पर बार-बार खेला जाना इस नाटक की शक्ति का सूचक है। इस छोटे से नाटक में सब कुछ है - पूरा युग, पूरा इतिहास, परम्परा और वर्तमान, काव्य और भाषा की लय, गंभीर संकेत, रंगमंच का व्याकरण और अभिनय-शक्ति की चुनौतियाँ भी। आप समझ सकते हैं कि पूरे बाज़ार दृश्य को अगर अभिनेता समूह और निर्देशक व्यापक कल्पना-दृष्टि, समकालीन व्यंग्य और प्रयोगशील तरीके से रच दे तो हर युग, हर काल में वह दृश्य नवीन अर्थों में जीवित हो उठता है।

वर्षों तक अंधेर नगरी का मंचन एक प्रहसन के रूप में होता रहा। यह विदित है कि काशी के हिंदू नेशनल थियेटर ने अंधेर नगरी का सबसे पहले मंचन किया था, बाद में भारतेंदुयुगीन लेखक प्रताप नारायण मिश्र ने कानपुर में इसकी प्रस्तुति (1882) कराई। आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने बलिया में (1884) इसके मंचन का उल्लेख किया है। बाद में 1891 से समकालीन हिंदी रंगमंच के उदय के साथ कल्पनाशील निर्देशकों का ध्यान अंधेर नगरी की ओर गया। सत्यव्रत सिन्हा ने अगर इसे आधुनिक वेशभूषा, प्रयोगात्मक शैली में प्रस्तुत किया तो अन्य कई निर्देशकों ने यथार्थवादी शैली और नौटंकी शैली में इसकी प्रस्तुति की। 1978 में ब.व.कारंत द्वारा यक्षगान शैली में इसकी प्रस्तुति एक सर्जनात्मक मोड़ था जिसमें परम्परा और आधुनिकता का, रंगमंच के सौंदर्यशास्त्र और समकालीन जीवन का, रचना और पुनर्रचना का अद्भुत मेल था। आधुनिक भारत में नई सांस्कृतिक क्रांति की आकांक्षा इस नाटक की प्रस्तुतियों से विकसित हुई। इस तरह एक प्रहसन पूर्ण, समग्र, संश्लिष्ट रचना होता गया और व्यंग्यार्थ खुलते गए, रंगमंच की दिशाएँ - संभावनाएँ बढ़ती गईं। जितने ही अधिक इसके मंचन हुए, उतना ही इस नाटक में 'लोकतंत्रीय रंगमंच' और दृश्यात्मक कविता का विस्तार हुआ। भारतेंदु के नाटक दृश्यों के नाटक हैं। वे वाक्यों, संवादों से कम, दृश्यों की कल्पना और दृश्यों के संयोजन से ही अर्थ-विस्तार और लय का वैचित्र्य पैदा करते हैं। दृश्यों के भीतर ही कई नाट्य-रूढ़ियाँ, गतियाँ, लोक-व्यवहार रहते हैं, ध्वनियाँ रहती हैं जिनपर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं रहती। बाज़ार दृश्य, दरबार दृश्य, फाँसी दृश्य सबमें आप यह महसूस कर सकते हैं। शब्दों के भीतर से अपने आप दृश्य उभरता है, अभिनय-भंगिमा निकलती है। आखिर क्या कारण है कि भय, आतंक के राजनीतिक-सामाजिक वातावरण में भी अंधेर नगरी की प्रस्तुति निःशंक भाव से हो जाती है और बाल रंगमंच, किशोरों और युवाओं के महोत्सवों में भी इसकी प्रस्तुतियाँ होती हैं। निर्देशकों ने इस नाटक को इसकी समकालीन प्रासंगिकता और रंगमंचीय सार्थकता-क्षमता के कारण ही हमेशा उठाया है। (नटरंग, 46, पृ.91) पुरानी पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' में भी बाबू शिवनंदन सहाय ने इसके प्रदर्शनों का वर्णन किया है (हरिश्चन्द्र, पृ.198) इसे मराठी सहित कई अन्य भारतीय भाषाओं में भी पेश किया गया है। इन प्रसंगों से अंधेर नगरी में निहित विविधता और हर आयु वर्ग, हर प्रकृति का सामंजस्य ज्ञात होता है। उसकी भीतरी प्रकृति में बड़ी आत्मीयता, सहज उल्लास और चुलबुलापन है।

अंधेर नगरी की भाषा में जो जिन्दादिली, जो लय-विधान है, जो पात्रों के भावानुसार उतास-चढ़ाव है और जो व्यंजनाएँ हैं, उनसे आप परिचित हो चुके हैं। भाषा का वह मौलिक रूप अभिनय को स्वतःस्फूर्त भी बनाता है और नई-नई भंगिमाएँ भी देता है। शब्दों की तोड़-मरोड़, स्थितियों की असम्बद्धता और भाषा की खानगी से यह नाटक स्वतः अभिनय और मंच की सर्जनशीलता को जन्म देता है। पिछली इकाइयों में आपको बताया गया है कि अंधेर नगरी का नाट्य-शिल्प एक-साथ बहुत सुगठित और लचीला है। नाटकीय स्थितियाँ उत्तरोत्तर विकसित होकर नाटक को उत्कर्ष तक ले जाती हैं जो रंगमंचीय सफलता का कारण है। उसके पात्र, बिम्ब, प्रतीक, गीत-संगीत सब हमारे बीच के हैं जिससे उसकी सार्वकालिकता और जीवन की सहज अनुभूतिपरकता बनती है। बिना बाह्य उपकरणों के यह सादे मंच का, खुले मंच का नाटक है जो इसके परम्परागत और प्रयोगात्मक दोनों रूपों को उजागर करता है।

3.7 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत आपको अंधेर नगरी के शिल्प, भाषा और रंगमंच की संपूर्ण जानकारी दी गई। आपने जाना कि इस नाटक का शिल्प अत्यंत लचीला, संगठित, आकर्षक और गत्यात्मक है। किसी भी प्रकार की परम्परागत रूढ़ि या आधुनिक शिल्प के प्रचलित ढाँचे से मुक्त करके भारतेंदु ने इस नाटक को इसका मौलिक और स्वतंत्र शिल्प दिया है। भारतेंदु की विशेषता उन दृश्यों की कल्पना, उनके संयोजन और नाटकीय उत्कर्ष में है। आपको बताया गया कि अंधेर नगरी गहरी व्यंग्यमूलक नाटकीय

स्थिति पर खड़ा है। नाटकीय व्यंग्य का कुशल निर्वाह ही उसे इतना चुस्त और लयात्मक बनाता है। अपने लचीलेपन के कारण यह नाटक यथार्थपरक भी लगता है और शैलीबद्ध भी। इसीलिए इसे सदाबहार नाटक भी कह सकते हैं। यह भी जान चुके हैं कि कथा-विन्यास की गतिशीलता की तरह उसके पात्र भी पूर्व-निर्धारित नहीं है, किसी चौखटे में बंधे नहीं है, जीवित पात्र हैं। वे नाटकीय व्यंग्य और विश्वजनीन संदर्भों को व्यंजित करने वाले पात्र हैं और प्रतीकात्मक भी हैं लेकिन फिर भी वे विशिष्ट और व्यक्ति-चरित्र नहीं हैं।

आप जान चुके हैं कि अंधेर नगरी के नाट्य-शिल्प और रूप-विधान की यह पूर्णता, यह लचीलापन और गत्यात्मकता उसके भाषिक प्रयोग के कारण भी है। यह भाषा बोलचाल की सीधी-सादी भाषा होते हुए भी अपने प्रयोग की विशेषता के कारण नवीन हो जाती है जो 'साहित्यिकता से मुक्ति' की जीवंत भाषा लगती है। पात्रों के स्वभाव, भावों और स्थितियों के अनुसार यह भाषा अपना स्वरूप ढाल लेती है। इस भाषा के रचाव में भी लोक-चेतना और आधुनिक चेतना एक-साथ काम करती हैं। आपको यह बताया गया है कि अंधेर नगरी के भाषिक प्रयोग में शब्द-चयन, शब्द-संयोजन, शब्दों की पुनरावृत्ति, यहाँ तक कि शब्दों की तोड़-मरोड़ और वाक्य-रचना का टूटा-फूटा होना भी उतना ही रचनात्मक काम करता है जितना ध्वनि, लय, संकेत, व्यंजनाएँ और उनसे उत्पन्न भंगिमाएँ एवं क्रियाएँ।

इकाई में यह भी स्पष्ट किया गया है कि शिल्प, रूप-विधान और भाषिक प्रयोग की सर्जनात्मकता और उनके आंतरिक संबंध ने अंधेर नगरी के रंगमंचीय रूप को भीतर से निखाया है। इस नाटक का मंच न आभिजात्य नाटक का है, न लोकमंच, न यथार्थवादी, न नुक्कड़ नाटक का और न आधुनिक शैली का। यह किसी भी प्रेम में बंधा न होकर लचीला, मौलिक और अनंत संभावनापूर्ण मंचीय सौंदर्य लिए है जिसमें हर देश, काल का निर्देशक अपनी रुचि और प्रतिभा के अनुसार कल्पना कर सकता है। आप जान चुके हैं कि पहले यह केवल प्रहसन के रूप में खेला जाता रहा। लेकिन अब इसे विविध नाट्य प्रयोगों के साथ खेला जाता है। आप यह भी जान गए हैं कि किसी विशेष शिल्प में बंधा न होकर भी अंधेर नगरी की मूल चेतना लोकधर्मी है। उसके कथानक की बुनावट में ताज़गी है और उसका खुलापन, गायन, नृत्य, गीत, संवाद-उच्चारण, अभिनय-शैली, भाषा सब लोक-नाटकों जैसी है। कौतुक वृत्ति और ज़िन्दादिली उसमें साथ-साथ चलते हैं। उसमें नौटंकी शैली और पारसी नाटकों जैसा आवेग और उत्तेजना भी मिलती है। आप जान चुके हैं कि अंधेर नगरी के बाज़ार दृश्य और राजसभा दृश्य की संरचना बहुत कठिन है। दोनों में बिखराव, एकरसता, पुनरावृत्ति दोष और चमत्कारितकता आ सकती थी पर वे आपको अत्यंत सांकेतिक, व्यंजनात्मक और उतास-चढ़ाव से युक्त लगेंगे - यह नाटककार का रचना-कौशल है। हर दृश्य, हर स्थिति अपने अनुपात में है। इस संगठित शिल्प के पीछे सांस्कृतिक चेतना, परम्परागत आधार, युगानुरूप दृष्टि और जन-संस्कार की निष्ठा है।

इकाई में आपको यह भी बताया गया है कि अंधेर नगरी के नाट्य-शिल्प की तरह उसका रूप-विधान भी मौलिक, लचीला और विलक्षण है। शास्त्रीय दृष्टि से वह प्रहसन है लेकिन प्राचीन लक्षण का अनुसरण करके नहीं। इसे दृष्टांत शैली का नाटक भी कहते हैं पर मूलतः यह लोकधर्मी चेतना से रचा गया है। इसमें स्वांग, नौटंकी के स्वरूप का भी अनुभव किया जा सकता है पर यह इन शैलियों का अनुकरण नहीं है। आपको यह भी बताया गया है कि इसमें समकालीन दृष्टि से शास्त्रीय विधान का प्रयोग भी किस तरह किया गया है। कभी इस नाटक में पारसी नाटक-विधान और अभिनय-शैली लगेगी और कभी एब्सर्ड नाटकों की तरह कथानकहीनता, असम्बद्ध स्थितियाँ, नामहीन, नायकत्वहीन पात्र, बेतुकी बातें, अर्थहीन भाषा मिलेगी पर वह एब्सर्ड नाटक भी नहीं है। अंधेर नगरी हिंदी नाट्य-कला की युगीन ज़रूरतों के अनुसार नाटक के रूप-विधान का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसकी रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ व्यंजनात्मक वैविध्य और समकालीन अनुभवों से कलात्मक होती गईं। समकालीन हिंदी रंगमंच पर इस नाटक की - यक्षगान शैली, नौटंकी शैली, पारसी शैली, यथार्थवादी शैली, नुक्कड़ नाटक, हास्य नाटक आदि - अनेक शैलियों में अविस्मरणीय प्रस्तुतियाँ हुईं जिनसे अंधेर नगरी नाटक की सार्वकालिकता, सांस्कृतिक क्रांति-चेतना खुलकर सामने आती रही है।

अभ्यास

1. रंगमंचीय विशेषताओं की दृष्टि से अंधेर नगरी के महत्व का उल्लेख कीजिए।

2. अंधेर नगरी की भाषिक संरचना और रूप-विधान का विवेचन करते हुए इसकी प्रासंगिक महत्ता को स्पष्ट कीजिए।
3. हिंदी की नाट्य परंपरा को अंधेर नगरी ने किस तरह से प्रभावित किया है?

'अंधेर नगरी' का नाट्यशिल्प